जन-संघर्ष और आंदोलन

परिचय

पिछले अध्यायों में हमने पढ़ा कि लोकतंत्र में सत्ता का बँटवारा क्यों ज़रूरी है और सरकार के अलग-अलग अंग तथा विभिन्न सामाजिक समूह कैसे सत्ता में हिस्सेदारी करते हैं। इस अध्याय में हम इसी पिछली चर्चा को आगे बढ़ाते हुए देखेंगे कि सत्ताधारी स्वच्छंद नहीं हैं। अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव और दबाव से वे मुक्त नहीं रह सकते। लोकतंत्र में अमूमन हितों और नज़रियों का टकराव चलते रहता है। हितों और नज़रियों के इस द्वंद्व की अभिव्यक्ति संगठित तरीके से होती है। जिनके पास सत्ता होती है उन्हें परस्पर विरोधी माँगों और दबावों में संतुलन बैठाना पड़ता है। इस अध्याय की शुरुआत में हम जानेंगे कि कैसे परस्पर विरोधी माँगों और दबावों के बीच लोकतंत्र आकार ग्रहण करता है। इस चर्चा के क्रम में हम यह भी जानेंगे कि आम नागरिक विभिन्न तरीकों तथा संगठनों के सहारे लोकतंत्र में अपनी भूमिका निभाते हैं। अध्याय में हम राजनीति को प्रभावित करने के अप्रत्यक्ष तरीके यानी दबाव-समूह और आंदोलनों की चर्चा करेंगे। इस तरह हम अगले अध्याय की बातों के लिए तैयार होंगे जिसमें राजनीतिक सत्ता को राजनीतिक दलों के ज़रिए नियंत्रित करने यानी राज-सत्ता को नियंत्रित करने के प्रत्यक्ष तरीके की चर्चा की गई है।

अध्याय 5

© NCERT not to be republished

नेपाल और बोलिविया में जन-संघर्ष

क्या आपको पोलैंड में लोकतंत्र की जीत की कथा याद है? हमने इसके बारे में पिछले साल कक्षा-9 की पुस्तक के पहले अध्याय में पढ़ा था। यह कहानी हमें लोकतंत्र की रचना में जनता की भूमिका की याद दिलाती है। आइए, इस तरह की दो हालिया घटनाओं के बारे में पढ़ें और जानें कि लोकतंत्र में सत्ता का इस्तेमाल कैसे होता है।

नेपाल में लोकतंत्र का आंदोलन

सन् 2006 के अप्रैल माह में नेपाल में एक विलक्षण जन-आंदोलन उठ खड़ा हुआ। शायद आपको याद हो कि नेपाल लोकतंत्र की 'तीसरी लहर' के देशों में एक है जहाँ लोकतंत्र 1990 के दशक में कायम हुआ। नेपाल में राजा औपचारिक रूप से राज्य का प्रधान बना रहा लेकिन वास्तविक सत्ता का प्रयोग जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में था। आत्यंतिक राजतंत्र से संवैधानिक राजतंत्र के इस संक्रमण को राजा वीरेन्द्र ने स्वीकार कर लिया था लेकिन शाही खानदान के एक रहस्यमय कत्लेआम में राजा वीरेन्द्र की हत्या हो गई। नेपाल के नए राजा ज्ञानेंद्र लोकतांत्रिक शासन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकार की अलोकप्रियता और कमज़ोरी का उन्होंने फ़ायदा उठाया। सन् 2005 की फ़रवरी में राजा ज्ञानेंद्र ने तत्कालीन प्रधानमंत्री को अपदस्थ करके जनता द्वारा निर्वाचित सरकार को भंग कर दिया। 2006 की अप्रैल में जो आंदोलन उठ खड़ा हुआ उसका लक्ष्य शासन की बागडोर राजा के हाथ से लेकर दोबारा जनता के हाथों में सौंपना था।

संसद की सभी बड़ी राजनीतिक पार्टियों ने एक 'सेवेन पार्टी अलायंस' (सप्तदलीय गठबंधन-एस.पी.ए.) बनाया और नेपाल की राजधानी काठमांडू में चार दिन के 'बंद' का आह्वान किया। इस प्रतिरोध ने जल्दी ही अनियतकालीन 'बंद' का रूप ले लिया और

मिन बजराचार्य

नेपाल के लोग और राजनीतिक दल एक 'रैली' में लोकतंत्र की बहालों की माँग करते हुए।

इसमें माओवादी बागी तथा अन्य संगठन भी साथ हो लिए। लोग कर्फ़्यू तोड़कर सड़कों पर उतर आए। तकरीबन एक लाख लोग रोज़ाना एकजुट होकर लोकतंत्र की बहाली की माँग कर रहे थे और लोगों की इतनी बड़ी तादाद के आगे सुरक्षा-बलों की एक न चल सकी। 21 अप्रैल के दिन आंदोलनकारियों की संख्या 3-5 लाख तक पहुँच गई और आंदोलनकारियों ने राजा को 'अल्टीमेटम' दे दिया। राजा ने आधे-अधूरे मन से कुछ रियायत देने की घोषणा की जिसे आंदोलन के नेताओं ने स्वीकार नहीं किया। नेता अपनी माँगों पर अडिग रहे कि संसद को बहाल किया जाय; सर्वदलीय सरकार बने तथा एक नयी संविधान-सभा का गठन हो।

24 अप्रैल 2006 अल्टीमेटम का अंतिम दिन था। इस दिन राजा तीनों माँगों को मानने के लिए बाध्य हुआ। एस.पी.ए. ने गिरिजा प्रसाद कोईराला को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री चुना। संसद फिर बहाल हुई और इसने अपनी बैठक में कानून पारित किए। इन कानूनों के सहारे राजा की अधिकांश शक्तियाँ वापस ले ली गईं। नयी संविधान-सभा के निर्वाचन के तौर-तरीकों पर एस.पी.ए. और माओवादियों के बीच सहमति बनी। इस संघर्ष को नेपाल का 'लोकतंत्र के लिए दूसरा आंदोलन' कहा गया। नेपाल के लोगों का यह संघर्ष पूरे विश्व के लोकतंत्र-प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

बोलिविया का जल-युद्ध

नेपाल अथवा पोलैंड की कथाएँ लोकतंत्र की स्थापना अथवा उसके पुनरुद्धार की बातें बताती हैं। लेकिन, जन-संघर्ष की भूमिका लोकतंत्र की स्थापना के साथ खत्म नहीं हो जाती। बोलिविया में लोगों ने पानी के निजीकरण के खिलाफ़ एक सफल संघर्ष

बात बोले भेद खोले

माओवादी : चीनी-क्रांति के नेता माओ की विचारधारा को मानने वाले साम्यवादी। माओवादी, मज़दूरों और किसानों के शासन को स्थापित करने के लिए सशस्त्र क्रांति के ज़रिए सरकार को उखाड़ फेंकना चाहते हैं।

© NCERT not to be republished

चलाया। इससे पता चलता है कि लोकतंत्र की जीवंतता से जन-संघर्ष का अंदरूनी रिश्ता है।

बोलिविया लातिनी अमरीका का एक गरीब देश है। विश्व बैंक ने यहाँ की सरकार पर नगरपालिका द्वारा की जा रही जलापूर्ति से अपना नियंत्रण छोड़ने के लिए दबाव डाला। सरकार ने कोचबंबा शहर में जलापूर्ति के अधिकार एक बहुराष्ट्रीय कंपनी को बेच दिए। इस कंपनी ने आनन-फानन में पानी की कीमत में चार गुना इज़ाफ़ा कर दिया। अनेक लोगों का पानी का मासिक बिल 1000 रुपये तक जा पहुँचा जबकि बोलिविया में लोगों की औसत आमदनी 5000 रुपये महीना है। इसके फलस्वरूप स्वत:स्फूर्त जन-संघर्ष भड़क उठा।

सन् 2000 की जनवरी में श्रमिकों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं तथा सामुदायिक नेताओं के बीच एक गठबंधन ने आकार ग्रहण किया और इस गठबंधन ने शहर में चार दिनों की कामयाब आम हड़ताल की। सरकार बातचीत के लिए राजी हुई और हड़ताल वापस ले ली गई। फिर भी, कुछ हाथ नहीं लगा। फ़रवरी में फिर आंदोलन शुरू हुआ लेकिन इस बार पुलिस ने बर्बरतापूर्वक दमन किया। अप्रैल में एक और हड़ताल हुई और सरकार ने 'मार्शल लॉ' लगा दिया। लेकिन, जनता की ताकत के आगे बहुराष्ट्रीय कंपनी के अधिकारियों को शहर छोड़कर भागना पड़ा। सरकार को आंदोलनकारियों की सारी माँगें माननी पड़ीं। बहुराष्ट्रीय कंपनी के साथ किया गया करार रद्द कर दिया गया और जलापूर्ति दोबारा नगरपालिका को सौंपकर पुरानी दरें कायम कर दी गईं। इस आंदोलन को 'बोलिविया के जलयुद्ध' के नाम से जाना गया।

क्या आप यह बताना चाहते हैं कि हड़ताल, धरना, प्रदर्शन और बंद जैसी चीज़ें लोकतंत्र के लिए अच्छी हैं?

लोकतंत्र और जन-संघर्ष

इन दो कथाओं का संदर्भ बड़ा अलग-अलग है। नेपाल में चले आंदोलन का लक्ष्य लोकतंत्र को स्थापित करना था जबकि बोलिविया के जन-संघर्ष में एक निर्वाचित और लोकतांत्रिक सरकार को जनता की माँग मानने के लिए बाध्य किया गया। बोलिविया का जन-संघर्ष सरकार की एक विशेष नीति के खिलाफ़ था जबकि नेपाल में चले आंदोलन ने यह तय किया कि देश की राजनीति की नींव क्या होगी। ये दोनों ही संघर्ष सफल रहे लेकिन इनके प्रभाव के स्तर अलग-अलग थे।

इन अंतरों के बावजूद दोनों ही कथाओं में कुछ ऐसी बातें हैं जो लोकतंत्र के अतीत और भविष्य के लिए प्रासंगिक हैं। ये दो कथाएँ राजनीतिक संघर्ष का उदाहरण हैं। दोनों ही घटनाओं में जनता बड़े पैमाने पर लामबंद हुई। जन-समर्थन की सार्वजनिक अभिव्यक्ति ने विवाद को उसके परिणाम तक पहुँचाया। इसके साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि दोनों ही घटनाओं में राजनीतिक संगठनों की भूमिका निर्णायक रही। अगर आपको कक्षा-9 की पाठ्यपुस्तक के पहले अध्याय की याद हो तो आप पहचान जाएँगे कि पूरे विश्व में लोकतंत्र का विकास ऐसे ही हुआ है। इस तरह हम इन दो उदाहरणों से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

- लोकतंत्र का जन-संघर्ष के जरिए विकास होता है। यह भी संभव है कि कुछ महत्वपूर्ण फ़ैसले आम सहमति से हो जाएँ और ऐसे फ़ैसलों के पीछे किसी तरह का संघर्ष न हो। फिर भी, इसे अपवाद ही कहा जाएगा। लोकतंत्र की निर्णायक घड़ी अमूमन वही होती है जब सत्ताधारियों और सत्ता में हिस्सेदारी चाहने वालों के बीच संघर्ष होता है। ऐसी घड़ी तब आती है जब कोई देश लोकतंत्र की ओर कदम बढ़ा रहा हो; उस देश में लोकतंत्र का विस्तार हो रहा हो अथवा वहाँ लोकतंत्र की जड़ें मज़बूत होने की प्रक्रिया में हों।
- लोकतांत्रिक संघर्ष का समाधान जनता की व्यापक लामबंदी के जरिए होता है। संभव है, कभी-कभी इस संघर्ष का समाधान मौजूदा संस्थाओं मसलन संसद अथवा

© NCERT not to be republished

न्यायपालिका के जरिए हो जाय। लेकिन, जब विवाद ज़्यादा गहन होता है तो ये संस्थाएँ स्वयं उस विवाद का हिस्सा बन जाती है। ऐसे में समाधान इन संस्थाओं के जरिए नहीं बल्कि उनके बाहर यानी जनता के माध्यम से होता है।

- ऐसे संघर्ष और लामबंदियों का आधार राजनीतिक संगठन होते हैं। यह बात सच है कि ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं में स्वत:स्फूर्त होने का भाव भी कहीं न कहीं ज़रूर मौजूद होता है लेकिन जनता की स्वत:स्फूर्त सार्वजनिक भागीदारी संगठित राजनीति के ज़रिए कारगर हो पाती है। संगठित राजनीति के कई माध्यम हो सकते हैं। ऐसे माध्यमों में राजनीतिक दल, दबाव-समूह और आंदोलनकारी समूह शामिल हैं।

क्या इसका मतलब यह हुआ कि जिस पक्ष ने ज़्यादा संख्या में लोग जुटा लिए वह अपना चाहा हुआ सब कुछ हासिल कर लेगा? क्या हम यह मानें कि लोकतंत्र का मतलब जिसकी लाठी उसकी भैंस?

सन् 1984 में कर्नाटक सरकार ने कर्नाटक पल्पवुड लिमिटेड नाम से एक कंपनी बनाई। इस कंपनी को लगभग 30,000 हेक्टेयर ज़मीन 40 सालों के लिए एक तरह से मुफ़्त में दे दी गई। इसमें से अधिकांश ज़मीन का इस्तेमाल किसान अपने पशुओं के लिए चरागाह के रूप में करते थे। कंपनी ने इस ज़मीन पर यूक्लिप्टस के पेड़ लगाने शुरू किए। इन पेड़ों का इस्तेमाल कागज़ बनाने की लुगदी तैयार करने के लिए किया जाना था। सन् 1987 में कित्तिको-हक्चिको (अर्थात् तोड़ो और रोपो) नाम का एक आंदोलन शुरू हुआ। इसमें अहिंसक प्रतिरोध का रास्ता अख्तियार किया गया। लोगों ने यूक्लिप्टस के पेड़ तोड़े और इनकी जगह वैसे पेड़ों के बिचड़े लगाए जो जनता के लिए फ़ायदेमंद थे।

नीचे कुछ समूहों के नाम दिए गए हैं। अगर आप इनमें से किसी भी समूह में होते तो अपने पक्ष के समर्थन में क्या दलील देते?

स्थानीय किसान, पर्यावरणवादी कार्यकर्ता, उपर्युक्त कंपनी में काम करने वाला अधिकारी अथवा कागज़ का उपभोक्ता।

लामबंदी और संगठन

आइए, हम ऊपर के दोनों उदाहरणों की तरफ़ लौटें और उन संगठनों की बात करें जिनके बूते ये संघर्ष सफल हुए। हमने देखा कि नेपाल में अनियतकालीन हड़ताल का आह्वान सात दलों के गठबंधन यानी एस.पी.ए. ने किया था। इस गठबंधन में ऐसे सात बड़े दल शामिल हुए जिनके कुछ न कुछ सदस्य संसद में थे। लेकिन, इस जन-संघर्ष के पीछे सिर्फ़ एस.पी.ए. ही नहीं था। इस संघर्ष में नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) ने भी भाग लिया जिसे संसदीय लोकतंत्र पर विश्वास नहीं है। यह पार्टी नेपाल की सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष चला रही थी और इसने नेपाल के एक बड़े हिस्से पर अपना नियंत्रण कर लिया था।

नेपाल के जन-संघर्ष में राजनीतिक दलों के अलावा अनेक संगठन शामिल थे। सभी बड़े मज़दूर संगठन और उनके परिसंघों ने इस आंदोलन में भाग लिया। अन्य अनेक संगठनों मसलन मूलवासी लोगों के संगठन तथा शिक्षक, वकील और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के समूह ने इस आंदोलन को अपना समर्थन दिया।

पानी के निजीकरण के खिलाफ़ बोलिविया में जो आंदोलन चला उसकी अगुआई किसी राजनीतिक दल ने नहीं की। इस आंदोलन का नेतृत्व 'फेडेकोर' (FEDECOR)

© NCERT not to be republished

मुझे यह 'लामबंदी' का जुमला पसंद नहीं आता। ऐसा जान पड़ता है मानों आदमी न हुए आलू के बोरे हों....

नामक संगठन ने किया। इस संगठन में इंजीनियर और पर्यावरणवादी समेत स्थानीय कामकाजी लोग शामिल थे। इस संगठन को सिंचाई पर निर्भर किसानों के एक संघ, कारखाना-मज़दूरों के संगठन के परिसंघ, कोचबंबा विश्वविद्यालय के छात्रों तथा शहर में बढ़ती बेघर-बार बच्चों की आबादी का समर्थन मिला। इस आंदोलन को 'सोशलिस्ट पार्टी' ने भी समर्थन दिया। सन् 2006 में बोलिविया में सोशलिस्ट पार्टी को सत्ता हासिल हुई।

इन दो उदाहरणों से हम जान सकते हैं कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी संघर्ष के पीछे बहुत से संगठन होते हैं। ये संगठन दो तरह से अपनी भूमिका निभाते हैं। लोकतंत्र में किसी फ़ैसले पर असर डालने का एक जाना-पहचाना तरीका राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदारी करने का होता है। इसके लिए पार्टी बनाई जाती है; चुनाव लड़ा जाता है और सरकार बनाई जाती है। लेकिन, हर नागरिक इतने प्रत्यक्ष ढंग से भागीदारी नहीं करता। संभव है, नागरिक की इच्छा न हो अथवा प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी की उसे ज़रूरत न महसूस होती हो। संभव है, उसके पास इसके लिए ज़रूरी कौशल का अभाव हो और वह ऐसे में सिर्फ़ मतदान करके प्रत्यक्ष राजनीति में अपनी हिस्सेदारी करता हो।

बहरहाल, ऐसे अनेक अप्रत्यक्ष तरीके हैं जिनके सहारे लोग सरकार से अपनी माँग अथवा नज़रिए का इज़हार कर सकते हैं। लोग इसके लिए संगठन बनाकर अपने हितों अथवा नज़रिए को बढ़ावा देने वाली गतिविधियाँ कर सकते हैं। इसे हित-समूह अथवा दबाव-समूह कहते हैं। कभी-कभी लोग बगैर संगठन बनाए अपनी माँगों के लिए एकजुट होने का फ़ैसला करते हैं। ऐसे समूहों को आंदोलन कहा जाता है।

दबाव-समूह और आंदोलन

बतौर संगठन दबाव-समूह सरकार की नीतियों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं।

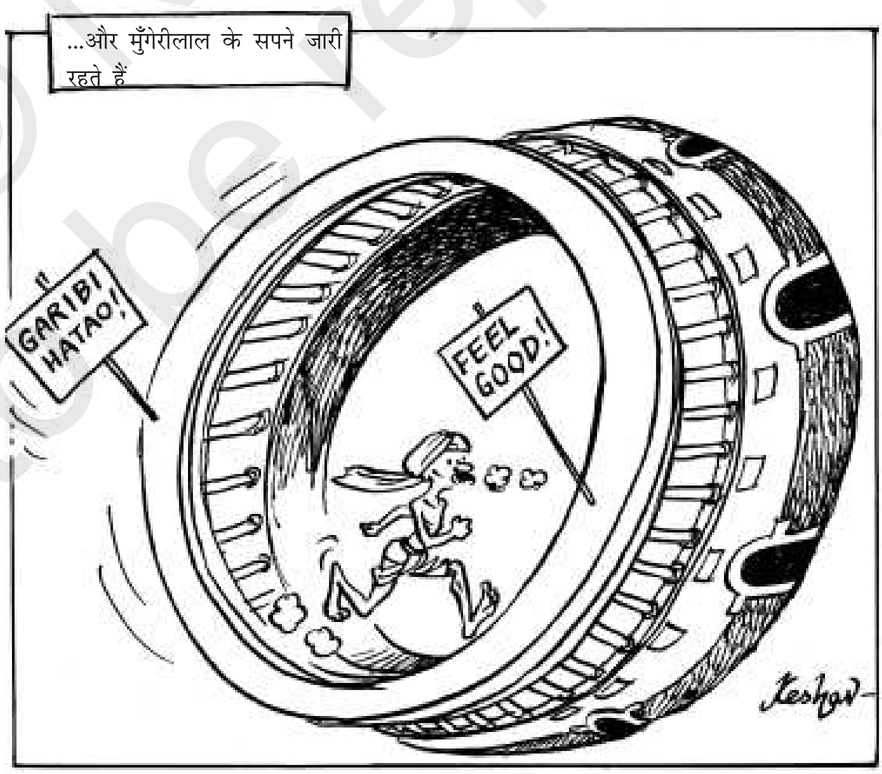

केशव, द हिंदू

Bhopal gas victims getting sub-standard drugs: NGOs

Pro-American tilt in foreign policy: AITUC

Journalists protest against assault on photographer

SEZs only way forward for job growth, says CII

RWAs hope that their side of the story will be heard too

Demand to ensure timely refund of VAT dues to Delhi's traders

लेकिन, राजनीतिक पार्टियों के समान दबाव-समूह का लक्ष्य सत्ता पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करने अथवा उसमें हिस्सेदारी करने का नहीं होता। दबाव-समूह का निर्माण तब होता है जब समान पेशे, हित, आकांक्षा अथवा मत के लोग एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एकजुट होते हैं।

ऊपर की चर्चा में हमारा सामना कुछ ऐसी बातों से हुआ जिन्हें हम संगठन नहीं कह सकते। नेपाल में हुए जन-संघर्ष को 'लोकतंत्र के लिए दूसरा आंदोलन' कहा गया था। हम अक्सर कई तरह की सामूहिक कार्रवाइयों के लिए जन-आंदोलन जैसा शब्द व्यवहार होता सुनते हैं, जैसे-नर्मदा बचाओ आंदोलन, सूचना के अधिकार का आंदोलन, शराब-विरोधी आंदोलन, महिला आंदोलन तथा पर्यावरण आंदोलन। दबाव-समूह के समान आंदोलन भी चुनावी मुकाबले में सीधे भागीदारी करने के बजाय राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। लेकिन, दबाव-समूहों के विपरीत आंदोलनों में संगठन ढीला-ढाला होता है। आंदोलनों में फ़ैसले अनौपचारिक ढंग से लिए जाते हैं और ये फ़ैसले लचीले भी होते हैं। आंदोलन जनता की स्वतःस्फूर्त भागीदारी पर निर्भर होते हैं न कि दबाव-समूह पर।

वर्ग विशेष के हित-समूह और जन-सामान्य के हित-समूह

हित-समूह अमूमन समाज के किसी ख़ास हिस्से अथवा समूह के हितों को बढ़ावा देना चाहते हैं। मज़दूर संगठन, व्यावसायिक संघ और पेशेवरों (वकील, डॉक्टर, शिक्षक आदि)

अखबार की इन कतरनों में जिन दबाव-समूहों का ज़िक्र किया गया है, क्या आप उन्हें पहचान सकते हैं? वे क्या माँग कर रहे हैं?

not to be republished

के निकाय इस तरह के दबाव-समूह के उदाहरण हैं। ये दबाव-समूह वर्ग-विशेषी होते हैं क्योंकि ये समाज के किसी खास तबके मसलन मज़दूर, कर्मचारी, व्यवसायी, उद्योगपति, धर्म-विशेष के अनुयायी अथवा किसी खास जाति आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे दबाव-समूह का मुख्य सरोकार पूरे समाज का नहीं बल्कि अपने सदस्यों की बेहतरी और कल्याण करना होता है।

कुछ संगठन समाज के किसी एक तबके के ही हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। ये संगठन सर्व-सामान्य हितों की नुमाइंदगी करते हैं जिनकी रक्षा ज़रूरी होती है। संभव है, ऐसा संगठन जिस उद्देश्य को पाना चाहता हो उससे इसके सदस्यों को कोई लाभ न हो। बोलिविया का 'फेडेकोर' (FEDECOR) नाम का संगठन ऐसे ही संगठन का उदाहरण है। नेपाल के मामले में हमने देखा कि वहाँ मानवाधिकार के संगठनों ने भी भागीदारी की थी। हमने ऐसे संगठनों के बारे में कक्षा-9 की किताब में पढ़ा था।

इन दूसरे किस्म के संगठनों को जन-सामान्य के हित-समूह अथवा लोक कल्याणकारी समूह कहते हैं। ऐसे संगठन किसी खास हित के बजाय सामूहिक हित का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका लक्ष्य अपने सदस्यों की नहीं बल्कि किन्हीं और की मदद करना होता है। मिसाल के लिए हम बँधुआ मज़दूरी के खिलाफ़ लड़ने वाले समूहों का नाम ले सकते हैं। ऐसे समूह अपनी भलाई के लिए नहीं बल्कि बँधुआ मज़दूरी के बोझ तले पिस रहे लोगों के लिए लड़ते हैं। कुछ मामलों में संभव है कि जन-सामान्य के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह ऐसे उद्देश्य को साधने के लिए आगे आएँ जिससे बाकियों के साथ-साथ उन्हें भी फ़ायदा होता हो। उदाहरण के लिए 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटीज़ एम्पलाइज फेडरेशन-BAMCEF) का नाम लिया जा सकता है। यह मुख्यतया सरकारी कर्मचारियों का संगठन है जो जातिगत भेदभाव के खिलाफ़

विकिपीडिया

ज़मीन के अधिकार को लेकर विरोध-प्रदर्शन : पश्चिमी जावा (इंडोनेशिया) के किसान। सन् 2004 में एक दिन पश्चिमी जावा (इंडोनेशिया) के लगभग 15,000 भूमिहीन किसान इंडोनेशिया की राजधानी जकार्त्ता पहुँचे। किसान अपने परिवार के साथ आए थे और भूमि-सुधार की माँग कर रहे थे। किसानों का कहना था कि हमें अपने 'फार्म' वापस लौटा दिए जाएँ। वे विश्व व्यापार संगठन और उसके विध्वंसक नियम-कानूनों का विरोध कर रहे थे। प्रदर्शनकारियों का नारा था-''ज़मीन नहीं तो वोट नहीं।'' उनका ऐलान था कि अगर किसी उम्मीदवार ने भूमि-सुधार का पक्ष नहीं लिया तो वे इंडोनेशिया में हो रहे राष्ट्रपति पद के पहले प्रत्यक्ष चुनाव का बहिष्कार करेंगे।

अभियान चलाता है। यह संगठन जातिगत भेदभाव के शिकार अपने सदस्यों की समस्याओं को देखता है लेकिन इसका मुख्य सरोकार सामाजिक न्याय और पूरे समाज के लिए सामाजिक समानता को हासिल करना है।

आंदोलनकारी समूह

दबाव-समूह के समान किसी आंदोलन में कई तरह के समूह शामिल रहते हैं। ऊपर कुछ उदाहरण दिए गए हैं जिससे इनकी एक साधारण विशेषता का संकेत मिलता है। अधिकतर आंदोलन किसी खास मुद्दे पर केंद्रित होते हैं। ऐसे आंदोलन एक सीमित समय-सीमा के भीतर किसी एक लक्ष्य को पाना चाहते हैं। कुछ आंदोलन ज़्यादा सार्वभौम प्रकृति के होते हैं और एक व्यापक लक्ष्य को बहुत बड़ी समयावधि में हासिल करना चाहते हैं।

नेपाल में उठे लोकतंत्र के आंदोलन का विशिष्ट उद्देश्य था राजा को अपने आदेशों को वापस लेने के लिए बाध्य करना। इन आदेशों के द्वारा राजा ने लोकतंत्र को समाप्त कर दिया था। भारत में, नर्मदा बचाओ आंदोलन ऐसे आंदोलन का अच्छा उदाहरण है। नर्मदा नदी पर बनाए जा रहे सरदार सरोवर बाँध के कारण लोग विस्थापित हुए। यह आंदोलन इसी खास मुद्दे को लेकर शुरू हुआ। इसका उद्देश्य बाँध को बनने से रोकना था। धीरे-धीरे इस आंदोलन ने व्यापक रूप धारण किया। इसने सभी बड़े बाँधों और विकास के उस मॉडल पर सवाल उठाए जिसमें बड़े बाँधों को अनिवार्य साबित किया जाता है। ऐसे आंदोलनों में नेतृत्व बड़ा स्पष्ट होता है और उनका संगठन भी होता है लेकिन ऐसे आंदोलन बहुत थोड़े समय तक ही सक्रिय रह पाते हैं।

किसी एक मुद्दे पर आधारित ऐसे आंदोलनों के बरक्स उन आंदोलनों को रखा जा सकता है जो लंबे समय तक चलते हैं और जिनमें एक से ज़्यादा मुद्दे होते हैं। पर्यावरण के आंदोलन तथा महिला आंदोलन ठेठ ऐसे ही आंदोलनों की मिसाल हैं। ऐसे आंदोलनों के नियंत्रण अथवा दिशा-निर्देश के लिए कोई एक संगठन नहीं होता। पर्यावरण आंदोलन के अंतर्गत अनेक संगठन तथा खास-खास मुद्दे पर आधारित आंदोलन शामिल हैं। इनके सबके संगठन अलग-अलग हैं;

सामाजिक आंदोलन और दबाव-समूह नागरिकों को कई तरह से लामबंद करने की कोशिश करते हैं। इस कोलॉज में कुछ ऐसे ही तरीकों को दिखाया गया है।

© NCERT not to be republished

कई लोकतांत्रिक सरकारें अपने नागरिकों को सूचना का अधिकार (RTI) प्रदान करती हैं। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 हमारी संसद द्वारा पारित एक ऐतिहासिक कानून है। नागरिक इस कानून के अंतर्गत, सरकारी कार्यालयों से उनकी विभिन्न गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि यह कार्टून इस कानून के पालन में नौकरशाही की अवरोधी भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाता है?

नेतृत्व भी अलहदा है और नीतिगत मामलों पर अक्सर इनकी राय अलग-अलग होती है। इसके बावजूद एक व्यापक उद्देश्य के ये साझीदार हैं और इनका दृष्टिकोण एक जैसा है। इसी वजह से इन्हें एक आंदोलन यानी पर्यावरण आंदोलन का नाम दिया जाता है। कभी-कभी ऐसे व्यापक आंदोलनों का एक ढीला-ढाला सा सर्व-समावेशी संगठन होता है। मिसाल के लिए नेशनल अलायंस फॉर पीपल्स मूवमेंट (NAPM) ऐसा ही संगठनों का संगठन है। विभिन्न मुद्दों पर संघर्ष कर रहे अनेक आंदोलनकारी समूह इस संगठन के घटक हैं। यह संगठन अपने देश में अनेक जनांदोलनों की गतिविधियों में तालमेल बैठाने का काम करता है।

दबाव-समूह और आंदोलन राजनीति पर कैसे असर डालते हैं?

दबाव-समूह और आंदोलन राजनीति पर कई तरह से असर डालते हैं :

- दबाव-समूह और आंदोलन अपने लक्ष्य तथा गतिविधियों के लिए जनता का समर्थन और सहानुभूति हासिल करने की कोशिश करते हैं। इसके लिए सूचना अभियान चलाना, बैठक आयोजित करना अथवा अर्ज़ी दायर करने जैसे तरीकों का सहारा लिया जाता है। ऐसे अधिकतर समूह मीडिया को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं ताकि उनके मसलों पर मीडिया ज़्यादा ध्यान दे।
- ऐसे समूह अक्सर हड़ताल अथवा सरकारी कामकाज में बाधा पहुँचाने जैसे उपायों का

समाचार की इन कतरनों में किन सामाजिक आंदोलनों का ज़िक्र है? ये आंदोलन क्या प्रयास कर रहे हैं और समाज के किस तबके को लामबंद करने की कोशिश में जुटे हैं?

© NCERT not to be republished

सहारा लेते हैं। मज़दूर संगठन, कर्मचारी संघ तथा अधिकतर आंदोलनकारी समूह अक्सर ऐसी युक्तियों का इस्तेमाल करते हैं कि सरकार उनकी माँगों की तरफ़ ध्यान देने के लिए बाध्य हो।

- व्यवसाय-समूह अक्सर पेशेवर 'लॉबिस्ट' नियुक्त करते हैं अथवा महँगे विज्ञापनों को प्रायोजित करते हैं। दबाव-समूह अथवा आंदोलनकारी समूह के कुछ व्यक्ति सरकार को सलाह देने वाली समितियों और आधिकारिक निकायों में शिरकत कर सकते हैं।

हालाँकि दबाव-समूह और आंदोलन दलीय राजनीति में सीधे भाग नहीं लेते लेकिन वे राजनीतिक दलों पर असर डालना चाहते हैं। अधिकतर आंदोलन किसी राजनीतिक दल से संबद्ध नहीं होते लेकिन उनका एक राजनीतिक पक्ष होता है। आंदोलनों की राजनीतिक विचारधारा होती है और बड़े मुद्दों पर उनका राजनीतिक पक्ष होता है। राजनीतिक दल और दबाव-समूह के बीच का रिश्ता कई रूप धारण कर सकता है जिसमें कुछ प्रत्यक्ष होते हैं तो कुछ अप्रत्यक्ष।

- कुछ मामलों में दबाव-समूह राजनीतिक दलों द्वारा ही बनाए गए होते हैं अथवा उनका नेतृत्व राजनीतिक दल के नेता करते हैं। कुछ दबाव-समूह राजनीतिक दल की एक शाखा के रूप में काम करते हैं। उदाहरण के लिए भारत के अधिकतर मज़दूर-संगठन और छात्र-संगठन या तो बड़े राजनीतिक दलों द्वारा बनाए गए हैं अथवा उनकी संबद्धता राजनीतिक दलों से है। ऐसे दबाव-समूहों के अधिकतर नेता अमूमन किसी न किसी राजनीतिक दल के कार्यकर्ता और नेता होते हैं।
- कभी-कभी आंदोलन राजनीतिक दल का रूप अख्तियार कर लेते हैं। उदाहरण के लिए 'विदेशी' लोगों के विरुद्ध छात्रों ने 'असम आंदोलन' चलाया और जब इस आंदोलन की समाप्ति हुई तो इस आंदोलन ने 'असम गण परिषद्' का रूप ले लिया। सन् 1930 और 1940 के दशक में तमिलनाडु में समाज-सुधार आंदोलन चले थे। डी.एम.के. और ए.आई.ए.डी.एम.के. जैसी पार्टियों की जड़ें इन समाज-सुधार आंदोलनों में ढूँढ़ी जा सकती हैं।
- अधिकांशतया दबाव-समूह और आंदोलन का राजनीतिक दलों से प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। दोनों परस्पर विरोधी पक्ष लेते हैं। फिर भी, इनके बीच संवाद कायम रहता है और सुलह की बातचीत चलती रहती है। आंदोलनकारी समूहों ने नए-नए मुद्दे उठाए हैं और राजनीतिक दलों ने इन मुद्दों को आगे बढ़ाया है। राजनीतिक दलों के अधिकतर नए नेता दबाव-समूह अथवा आंदोलनकारी समूहों से आते हैं।

क्या दबाव-समूह और आंदोलन के प्रभाव सकारात्मक होते हैं?

शुरुआती तौर पर लग सकता है कि किसी एक ही तबके के हितों की नुमाइंदगी करने वाले दबाव-समूह लोकतंत्र के लिए हितकर नहीं हैं। लोकतंत्र में किसी एक तबके के

किसी भी समाचार चैनल के समाचार एक हफ़्ते तक लगातार देखें। निम्नलिखित क्षेत्र अथवा तबके का प्रतिनिधित्व करते आंदोलन अथवा दबाव-समूहों से जुड़ी ख़बरों का एक खाका तैयार करें : किसान, व्यापारी, मज़दूर, उद्योग, पर्यावरण और महिला। इनमें से किसका जिक्र टेलीविज़न के समाचारों में सबसे ज़्यादा हुआ? किस तबके अथवा हित-समूह का जिक्र समाचारों में सबसे कम हुआ? (टेलीविज़न की जगह आप अख़बार का भी इस्तेमाल कर सकते हैं।)

© NCERT not to be republished

ग्रीनबेल्ट (हरितपट्टी) मूवमेंट के अंतर्गत पूरे केन्या में 3 करोड़ वृक्ष लगाए गए। इस आंदोलन के नेता वांगरी मथाई सरकारी अधिकारियों और राजनेताओं के रुख से बड़े नाखुश हैं। उनका कहना है, ''सन् 1970 और 1980 के दशक में जब मैं किसानों को वृक्षारोपण के लिए उत्साहित कर रही थी तो मुझे पता चला कि सरकार के भ्रष्ट कर्मचारी ही वनों के अधिकांश विनाश के लिए ज़िम्मेदार हैं। इन लोगों ने अपने चहेते 'डेवलेपर्स' को जमीन और वृक्ष अवैध रूप से बेच रखे थे। सन् 1990 के दशक में राष्ट्रपति डेनियल अरेप मोई की सरकार के कुछ तत्वों ने जातीय समुदायों को ज़मीन के सवाल पर आपस में लड़वा दिया। इससे 'रिफ्ट वैली' के अनेक केन्यावासियों की आजीविका और अधिकार जाते रहे। कुछ को अपनी जान गँवानी पड़ी। शासक दल के समर्थकों को ज़मीन मिली और लोकतंत्र-समर्थक आंदोलन के पक्ष में बोलने वालों को विस्थापित होना पड़ा। यह सरकार की एक चाल थी जिसका उद्देश्य समुदायों को ज़मीन के सवाल पर आपस में लड़वाकर सत्ता पर कब्ज़ा जमाए रखना था। अगर वे एक-दूसरे से भिड़ते रहेंगे तो लोकतंत्र की माँग करने के लिए उनके पास कम मौके होंगे।''

ऊपर के अनुच्छेद में आपको लोकतंत्र और सामाजिक आंदोलन में क्या संबंध नज़र आ रहा है? इस आंदोलन को सरकार के प्रति क्या रवैया अपनाना चाहिए?

एलेन लाउजन फाल्कन-केगल कार्टून्स

नहीं बल्कि सबके हितों की रक्षा होनी चाहिए। यह भी लग सकता है कि ऐसे समूह सत्ता का इस्तेमाल तो करना चाहते हैं लेकिन ज़िम्मेदारी से बचना चाहते हैं। राजनीतिक दलों को चुनाव के समय जनता का सामना करना पड़ता है लेकिन ये समूह जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होते। संभव है कि दबाव-समूहों और आंदोलनों को जनता से समर्थन अथवा धन न मिले। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि दबाव-समूहों को बहुत कम लोगों का समर्थन प्राप्त हो लेकिन उनके पास धन ज़्यादा हो और इसके बूते अपने संकुचित एजेंडे पर वे सार्वजनिक बहस का रुख मोड़ने में सफल हो जाएँ।

लेकिन थोड़ा संतुलित नज़रिया अपनाएँ तो स्पष्ट होगा कि दबाव-समूहों और आंदोलनों के कारण लोकतंत्र की जड़ें

इस कार्टून का शीर्षक है 'खबर-बेखबर' मीडिया में अक्सर किसकी चर्चाएँ चलती हैं? अख़बारों में ज़्यादातर किनके बारे में लिखा गया होता है?

मज़बूत हुई हैं। शासकों के ऊपर दबाव डालना लोकतंत्र में कोई अहितकर गतिविधि नहीं बशर्ते इसका अवसर सबको प्राप्त हो। सरकारें अक्सर थोड़े से धनी और ताकतवर लोगों के अनुचित दबाव में आ जाती हैं। जन-साधारण के हित-समूह तथा आंदोलन इस अनुचित दबाव के प्रतिकार में उपयोगी भूमिका निभाते हैं और आम नागरिक की ज़रूरतों तथा सरोकारों से सरकार को अवगत कराते हैं।

वर्ग-विशेषी हित-समूह भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब विभिन्न समूह सक्रिय हों तो कोई एक समूह समाज के ऊपर प्रभुत्व कायम नहीं कर सकता। यदि कोई एक समूह सरकार के ऊपर अपने हित में नीति बनाने के लिए दबाव डालता है तो दूसरा समूह इसके प्रतिकार में दबाव डालेगा कि नीतियाँ उस तरह से न बनाई जाएँ। सरकार को भी ऐसे में पता चलता रहता है कि समाज के विभिन्न तबके क्या चाहते हैं। इससे परस्पर विरोधी हितों के बीच सामंजस्य बैठाना तथा शक्ति-संतुलन करना संभव होता है।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. दबाव-समूह और आंदोलन राजनीति को किस तरह प्रभावित करते हैं?
2. दबाव-समूहों और राजनीतिक दलों के आपसी संबंधों का स्वरूप कैसा होता है, वर्णन करें।
3. दबाव-समूहों की गतिविधियाँ लोकतांत्रिक सरकार के कामकाज में कैसे उपयोगी होती हैं?
4. दबाव-समूह क्या हैं? कुछ उदाहरण बताइए।
5. दबाव-समूह और राजनीतिक दल में क्या अंतर है?
6. जो संगठन विशिष्ट सामाजिक वर्ग जैसे मज़दूर, कर्मचारी, शिक्षक और वकील आदि के हितों को बढ़ावा देने की गतिविधियाँ चलाते हैं उन्हें ----------- कहा जाता है।
7. निम्नलिखित में किस कथन से स्पष्ट होता है कि दबाव-समूह और राजनीतिक दल में अंतर होता है –
   (क) राजनीतिक दल राजनीतिक पक्ष लेते हैं जबकि दबाव-समूह राजनीतिक मसलों की चिंता नहीं करते।
   (ख) दबाव-समूह कुछ लोगों तक ही सीमित होते हैं जबकि राजनीतिक दल का दायरा ज़्यादा लोगों तक फैला होता है।
   (ग) दबाव-समूह सत्ता में नहीं आना चाहते जबकि राजनीतिक दल सत्ता हासिल करना चाहते हैं।
   (घ) दबाव-समूह लोगों की लामबंदी नहीं करते जबकि राजनीतिक दल करते हैं।
8. सूची-I (संगठन और संघर्ष) का मिलान सूची-II से कीजिए और सूचियों के नीचे दी गई सारणी से सही उत्तर चुनिए :

	सूची-I	**सूची-II**
1	किसी विशेष तबके या समूह के हितों को बढ़ावा देने वाले संगठन	(क) आंदोलन
2	जन-सामान्य के हितों को बढ़ावा देने वाले संगठन	(ख) राजनीतिक दल
3	किसी सामाजिक समस्या के समाधान के लिए चलाया गया एक ऐसा संघर्ष जिसमें सांगठनिक संरचना हो भी सकती है और नहीं भी।	(ग) वर्ग-विशेष के हित समूह
4	ऐसा संगठन जो राजनीतिक सत्ता पाने की गरज़ से लोगों को लामबंद करता है।	(घ) लोक कल्याणकारी हित समूह

	1	2	3	4
(क)	ग	घ	ख	क
(ख)	ग	घ	क	ख
(ग)	घ	ग	ख	क
(घ)	ख	ग	घ	क

© NCERT not to be republished

9. सूची I का सूची II से मिलान करें जो सूचियों के नीचे दी गई सारणी में सही उत्तर हो चुनें :

	सूची I	**सूची II**
1	दबाव सूमह	(क) नर्मदा बचाओ आंदोलन
2	लंबी अवधि का आंदोलन	(ख) असम गण परिषद्
3	एक मुद्दे पर आधारित आंदोलन	(ग) महिला आंदोलन
4	राजनीतिक दल	(घ) खाद विक्रेताओं का संघ

	1	2	3	4
(अ)	घ	ग	क	ख
(ब)	ख	क	घ	ग
(स)	ग	घ	ख	क
(द)	ख	घ	ग	क

10. दबाव-समूहों और राजनीतिक दलों के बारे में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(क) दबाव-समूह समाज के किसी खास तबके के हितों की संगठित अभिव्यक्ति होते हैं।

(ख) दबाव-समूह राजनीतिक मुद्दों पर कोई न कोई पक्ष लेते हैं।

(ग) सभी दबाव-समूह राजनीतिक दल होते हैं।

अब नीचे दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनें –

(अ) क, ख और ग (ब) क और ख (स) ख और ग (द) क और ग

11. मेवात हरियाणा का सबसे पिछड़ा इलाका है। यह गुड़गाँव और फ़रीदाबाद ज़िले का हिस्सा हुआ करता था। मेवात के लोगों को लगा कि इस इलाके को अगर अलग ज़िला बना दिया जाय तो इस इलाके पर ज़्यादा ध्यान जाएगा। लेकिन, राजनीतिक दल इस बात में कोई रुचि नहीं ले रहे थे। सन् 1996 में मेवात एजुकेशन एंड सोशल आर्गेनाइजेशन तथा मेवात साक्षरता समिति ने अलग ज़िला बनाने की माँग उठाई। बाद में सन् 2000 में मेवात विकास सभा की स्थापना हुई। इसने एक के बाद एक कई जन-जागरण अभियान चलाए। इससे बाध्य होकर बड़े दलों यानी कांग्रेस और इंडियन नेशनल लोकदल को इस मुद्दे को अपना समर्थन देना पड़ा। उन्होंने फ़रवरी 2005 में होने वाले विधान सभा के चुनाव से पहले ही कह दिया कि नया ज़िला बना दिया जाएगा। नया ज़िला सन् 2005 की जुलाई में बना।

इस उदाहरण में आपको आंदोलन, राजनीतिक दल और सरकार के बीच क्या रिश्ता नज़र आता है? क्या आप कोई ऐसा उदाहरण दे सकते हैं जो इससे अलग रिश्ता बताता हो?

प्रश्नावली

© NCERT not to be republished